जनसत्ता

30 मार्च, 2019

आतंक पर मतभेद

अमेरिका ने एक बार फिर जैश-ए-मोहम्मद के सरगना मसूद अजहर को वैश्विक आतंकवादी घोषित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में एक मसौदा पेश किया है। फ्रांस और ब्रिटेन ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया है। पर चीन के रुख में कोई बदलाव नजर नहीं आ रहा। उसने कहा है कि इस मसले पर अमेरिका दबाव बनाने का प्रयास न करे। यानी इस बार भी मसूद अजहर को वैश्विक आतंकवादियों की सूची में डाले जाने का प्रयास विफल होता नजर आ रहा है। इससे पहले चीन इस मसौदे के खिलाफ चार बार अपनी वीटो शक्ति का इस्तेमाल कर चुका है। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के नियमों के मुताबिक अगर उसका एक भी स्थायी सदस्य देश किसी मसौदे के खिलाफ वोट करता है, तो उसे निरस्त मान लिया जाता है। चीन शुरू से ही अजहर मसूद को वैश्विक आतंकवादी घोषित करने के खिलाफ रहा है। हालांकि अजहर और उसके संगठन जैश-ए-मोहम्मद के खिलाफ अनेक सबूत हैं। भारत की तरफ से कई मौकों पर उसकी आतंकवादी गतिविधियों से जुड़े सबूत और दस्तावेज पेश किए जा चुके हैं। मगर पाकिस्तान सरकार हमेशा उसका बचाव करती रही है। अभी पुलवामा की घटना में भी जैश-ए-मोहम्मद ने सीआरपीएफ के काफिले पर विस्फोट कर चालीस जवानों के मारे जाने की जिम्मेदारी ली थी। अगर अजहर को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की वैश्विक आतंकवादी सूची में डालने में कामयाबी मिलती है, तो न सिर्फ भारत के लिए बड़ी राहत की बात होगी, बल्कि आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई को भी बल मिलेगा।

मगर चीन के असहयोगात्मक रवैए से इस दिशा में कामयाबी नहीं मिल पा रही। चीन के इस रुख की कुछ वजहें साफ हैं। इस समय चीन पाकिस्तान का सहयोग करके वहां अपनी उपस्थिति सघन करना चाहता है, ताकि दक्षिण एशिया में अपना दबदबा कायम रख सके। इसलिए वह पाकिस्तान में परमाणु बिजली आदि से जुड़ी परियोजनाएं भी चला रहा है। दक्षिण चीन सागर में अपनी स्थिति मजबूत करने का प्रयास वह लंबे समय से कर ही रहा है। फिर अमेरिका के साथ भारत की बढ़ती नजदीकियां भी उसे कहीं न कहीं खटकती रही हैं। वह बेशक भारत के साथ रिश्तों में गरमी लाने का प्रयास करता दिखता है, पर वह उसकी कारोबारी रणनीति अधिक होती है, राजनीतिक इच्छाशक्ति कम। फिर भारत जिस तरह तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था और तकनीकी रूप से मजबूत राष्ट्र के रूप में उभर रहा है, वह चीन के लिए चुनौती से कम नहीं है। तिब्बत और ताइवान के प्रति भारत का दोस्ताना रुख भी उसे परेशान करता है। पर मसूद के मामले में उसका रुख इसलिए भी अड़ियल है कि आतंकवाद को लेकर उसका रवैया हमेशा दोहरा रहा है।

आतंकवाद निस्संदेह दुनिया भर के लिए एक बड़ी चुनौती बन चुका है। इससे निपटने के लिए तमाम शक्तिशाली राष्ट्रों ने संकल्प लिया है। पर हकीकत यह है कि आतंकवाद को ठीक से परिभाषित न किए जा सकने की वजह से कई राष्ट्र एक ही तरह की घटना को कहीं आतंकवाद मानते हैं, तो कहीं उसे आजादी की लड़ाई मान लेते हैं। चीन का भ्रम कुछ इस वजह से भी है। पर तमाम सबूतों और दलीलों के बावजूद अजहर के मामले में उसका भ्रम बना हुआ है, तो उसकी बड़ी वजह पाकिस्तान से जुड़े उसके स्वार्थ हैं। जब तक उसे अपने स्वार्थों को किनारे करके आतंकवाद से निपटने का संकल्प महत्त्वपूर्ण नहीं लगेगा, तब तक इस मसले का हल आसान नजर नहीं आता।

दागी और कानून

राजनीति में दागी छवि वाले नेताओं को आने से कैसे रोका जाए, इसका कोई मुकम्मल इंतजाम नहीं हो पाया है। हालांकि इस मामले में लंबी सुनवाई के बाद सुप्रीम कोर्ट के संविधान पीठ ने इसकी जिम्मेदारी संसद पर ही डाल दी थी कि इसके लिए वही कानून बनाए। लेकिन यह दुर्भाग्य ही है कि संसद की ओर से इस दिशा में कोई कदम नहीं उठाया गया। इतना ही नहीं, पिछले साल सितंबर में सर्वोच्च अदालत ने दागी उम्मीदवारों को लेकर जो दिशा-निर्देश चुनाव आयोग को दिए थे, उन पर भी अमल नहीं हो रहा है। सुप्रीम कोर्ट ने साफ कहा था कि सभी उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने से पहले निर्वाचन आयोग के समक्ष अपनी आपराधिक पृष्ठभूमि की घोषणा करनी होगी। राजनीतिक दलों को भी अपने उम्मीदवारों की आपराधिक पृष्ठभूमि के बारे में प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक और सोशल मीडिया के माध्यम से व्यापक प्रचार करने को कहा गया था, ताकि मतदाताओं को उनके बारे में जानकारी मिल सके। राजनीतिक दल और उम्मीदवार इसका पालन करें, यह चुनाव आयोग को सुनिश्चित कराना है। इसके बाद निर्वाचन आयोग ने फार्म-26 में संशोधन कर अधिसूचना जारी की थी और राजनीतिक दलों व उम्मीदवारों से कहा था कि वे अपने आपराधिक मामलों के बारे में मीडिया के जरिए लोगों को जानकारी दें। लेकिन अब तक व्यवहार में ऐसा होता दिख नहीं रहा है।

इसी को लेकर फिर से सर्वोच्च अदालत का दरवाजा खटखटाया गया है। अदालत में दायर याचिका में कहा गया कि निर्वाचन आयोग ने चुनाव चिह्न आदेश, 1968 और आचार संहिता में संशोधन नहीं किया और इस वजह से फार्म-26 में संशोधन की अधिसूचना का कानून की नजर में कोई महत्त्व नहीं रह गया है। आयोग ने उन प्रमुख अखबारों और समाचार चैनलों की सूची भी प्रकाशित नहीं की जिनमें उम्मीदवारों को अपनी आपराधिक छवि के बारे में बताने की अनिवार्यता हो। अब हो यह रहा है कि इसका फायदा उम्मीदवार उठा रहे हैं और अपने बारे में कम लोकप्रिय समाचार पत्रों में इन्हें प्रकाशित करा रहे हैं और कम महत्त्वपूर्ण समय के दौरान चैनलों पर इसका प्रसारण करा रहे हैं। राजनीतिक दल तो आपराधिक छवि वाले उम्मीदवारों के बारे में प्रचार करने से परहेज कर रहे हैं और मौन साधे बैठे हैं। सवाल है कि ऐसे में जनता कैसे जानेगी कि कौन उम्मीदवार दागी है, कौन नहीं और दागी है तो उसका आपराधिक रेकार्ड क्या है!

सुप्रीम कोर्ट ने चुनाव आयोग और केंद्र सरकार दोनों को इस बारे में नोटिस दिया है। अगर सर्वोच्च अदालत के निर्देशों की अनदेखी हो रही है, आदेशों की पालना नहीं हो रही है तो यह अदालत की अवमानना है। जाहिर है, अपने हितों के लिए राजनीतिक दल ऐसा नहीं हो दे रहे और खानापूर्ति करके जनता व अदालत की आंखों में धूल झोंक रहे हैं। सुप्रीम कोर्ट ने दागी नेताओं को चुनावी राजनीति से दूर रखने के लिए जो निर्देश दिए थे उनमें साफ कहा गया था कि हर उम्मीदवार को नामांकन पत्र के साथ शपथपत्र में अपने खिलाफ लगे आरोपों को मोटे अक्षरों में लिखना होगा, पार्टियों को उम्मीदवारों पर लगे आरोपों की जानकारी वेबसाइट और मीडिया के माध्यम से जनता को देनी होगी, उम्मीदवार के परचा दाखिल करने के बाद कम से कम तीन बार पार्टियों को उनके बारे में ऐसा प्रचार करना जरूरी होगा। अदालत का कहना था कि जनता को यह जानने का हक है कि उम्मीदवार का इतिहास कैसा है। लेकिन अफसोस की बात यह है कि शायद राजनीतिक दल खुद ही नहीं चाहते कि अपराधियों को आने से रोका जाए।

कल्पमेधा

सभी लोग सत्य, पवित्रता व स्वार्थहीनता की उपासना करते हैं, केवल इसी कारण उन्हें इनका तनिक भी अनुभव नहीं। काश वे इन्हें जान भर पाते।

–बर्नार्ड शॉ

कैसे बढ़े महिलाओं की भागीदारी

रवि शंकर

> भारत के लोकतंत्र के लिए यह दुखद ही है कि पिछले बासठ सालों में लोकसभा में चुनी हुई महिलाओं की मौजूदगी दोगुनी भी नहीं हुई है। बड़े और प्रमुख राजनीतिक दल महिलाओं को बराबरी का दर्जा देने और लोकसभा व विधानसभाओं में तैंतीस फीसद आरक्षण देने की चाहे जितनी वकालत करें, उनकी कथनी और करनी में फर्क बरकरार है।

संसद और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं का प्रतिनिधित्व आज भी पर्याप्त संख्या में नहीं है। शुरुआत से ही संसद में महिला व पुरुष सदस्यों का अनुपात असमान रहा है। चिंता की बात यह है कि महिला मतदाताओं की बढ़ती संख्या के बावजूद राज्य विधानसभाओं में उनकी उपस्थिति बमुश्किल सात से आठ फीसद है तो संसद में उनकी मौजूदगी महज बारह फीसद है। जबकि भारत में महिलाएं कुल जनसंख्या का करीब अड़तालीस फीसद हैं। लेकिन विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार रोजगार में उनकी हिस्सेदारी सिर्फ छब्बीस फीसद है। गौर करने वाली बात यह है कि 2011 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार देश में महिला साक्षरता की दर पैंसठ फीसद है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि देश में साक्षर महिलाओं में से आधी महिलाएं देश की जीडीपी में अपनी भूमिका तय नहीं कर पा रही हैं। अगर संसद में उनकी भागीदारी की बात की जाए तो वर्तमान में यह महज बारह फीसद के आसपास है। पांच सौ तियालीस सीटों वाली लोकसभा में इस समय बासठ महिला सांसद हैं। इससे पहले 2009 में अट्ठावन महिलाएं थीं। थोड़ा-सा ग्राफ जरूर बढ़ा, मगर तैंतीस फीसद आरक्षण के हवाले से तो यह नगण्य ही कहा जाएगा। इन आंकड़ों को देख कर अनुमान लगाया जा सकता है कि देश में महिलाओं के प्रतिनिधित्व को लेकर हमारा राजनीतिक नेतृत्व क्या सोचता है।

भारत के लिए लोकतंत्र के लिए यह दुखद ही है कि पिछले बासठ सालों में भारत की लोकसभा में चुनी हुई महिलाओं की मौजूदगी दोगुनी भी नहीं हुई है। बड़े और प्रमुख राजनीतिक दल महिलाओं को बराबरी का दर्जा और लोकसभा व विधानसभाओं में तैंतीस फीसद आरक्षण देने की चाहे जितनी वकालत करें, उनकी कथनी और करनी में फर्क बरकरार है। महिलाओं के सशक्तिकरण और बराबरी की बात करने वाले दलों की असलियत टिकट वितरण के समय सामने आ जाती है। पितृ-सत्तात्मक संरचना वाले समाज में घर हो या दफ्तर, सड़क हो या संसद, स्त्रियों के विकास का ढोल तो खूब पीटा जाता है, पर उनके हितों को लेकर कोई ठोस कार्ययोजना नहीं दिखती। यह ठीक है कि चुनावों के पहले तो सभी दल महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने की बात करते रहे हैं, लेकिन अभी तक संसद में महिला आरक्षण संबंधी बिल नहीं पारित हुआ है।

आजादी हासिल करने के साथ ही भारत में महिलाओं को मतदान का अधिकार मिल गया था, जबकि पश्चिमी देशों की महिलाओं को मतदान का अधिकार हासिल करने के लिए लंबा संघर्ष करना पड़ा। मतदान के लिहाज से आजादी के बाद के दशकों में बतौर मतदाता महिलाएं कम ही सामने आईं। लेकिन अब चुनाव दर चुनाव महिला मतदाताओं की संख्या में लगातार इजाफा हो रहा है और किसी भी सरकार को चुनने में अब वे निर्णायक भूमिका में हैं। लेकिन संसद में तैंतीस फीसद आरक्षण के अधिकार से आज भी वंचित हैं। जबकि आधी आबादी तो पचास फीसद आरक्षण चाहती है। एक मतदाता के रूप में शुरू हुआ भारतीय महिला का राजनीतिक सफर गांव-पंचायत, विधानसभा और फिर संसद तक के पड़ावों तक पहुंचते-पहुंचते पस्त होने लगता है।

सत्रहवीं लोकसभा के चुनाव के लिए ममता बनर्जी ने पश्चिम बंगाल की कुल बयालीस लोकसभा सीटों पर तृणमूल कांग्रेस की तरफ से चालीस फीसद यानी सत्रह महिला उम्मीदवारों को उतारा है। पश्चिम बंगाल के पड़ोसी राज्य ओड़िशा में बीजू जनता दल (बीजद) के सुप्रीमो नवीन पटनायक ने अपनी पार्टी से इक्कीस उम्मीदवारों में से सात महिलाएं यानी तैंतीस फीसद महिलाओं को टिकट देने का फैसला किया। साफ है, दोनों राज्य सरकारों का यह फैसला महिलाओं को सशक्त बनाने के उनके इरादे के अनुरूप है। लेकिन अन्य दल इस कवायद में पीछे क्यों रहे, यह तो मतदाताओं को पूछना ही चाहिए। मालूम हो, बीते साल ओड़िशा विधानसभा ने संसद और विधानसभाओं में महिलाओं के लिए तैंतीस फीसद आरक्षण का प्रस्ताव पारित किया था। यह कदम प्रशंसनीय है क्योंकि लंबे समय से चले आ रहे इस प्रस्ताव को अधिकांश दलों ने महज दिखावे और शोरशराबे तक सीमित रखा है। दिलचस्प बात यह है कि शक्तिशाली महिला नेताओं के नेतृत्व में भी महिलाओं को विधायिका में समुचित हिस्सेदारी का कदम महज वादों और बातों तक सीमित रह गया है।

दरअसल, जब संविधान में एक सौ आठवां संशोधन विधेयक, 2008 का प्रस्ताव आया था तब एक-तिहाई लोकसभा व विधानसभा सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित करने की बाबत उम्मीद की एक किरण जगी थी। प्रस्ताव को 2010 में राज्यसभा ने पारित कर दिया था, पर लोकसभा ने उस पर कभी मतदान नहीं किया। वर्ष 1990 में बीजू पटनायक पंचायती राज संस्थानों में महिलाओं के लिए तैंतीस फीसद कोटा लागू करने वाले देश के पहले मुख्यमंत्री थे और 2012 में नवीन पटनायक ने इसे पचास फीसद तक बढ़ाया। लेकिन भाजपा और कांग्रेस इस संकल्प को दोहराते तो जरूर रहे कि लोकसभा और विधानसभा चुनाव में महिलाओं को तैंतीस फीसदी आरक्षण देंगे, लेकिन टिकट देने की बारी आई तो दोनों ही दल अपने वादे से पीछे हटते नजर आए। इससे पता चलता है कि भारत के संसदीय लोकतंत्र में महिलाओं की स्थिति कितनी कमजोर है।

दुनियाभर की संसदों में महिलाओं के प्रतिनिधित्व पर अंतर-संसदीय संघ के ताजा अध्ययन से चलता है कि यूरोप, अमेरिका और दुनिया के अन्य विकसित देशों की संसदों में महिला जनप्रतिनिधियों की संख्या के मुकाबले हम कहीं नहीं ठहरते। हमारे पड़ोसी देश पाकिस्तान, चीन, नेपाल, बांग्लादेश और अफगानिस्तान भी इस मामले में हमसे कहीं आगे हैं। अफ्रीकी महाद्वीप के कुछ अति पिछड़े देशों की संसदों में भी महिलाओं की हिस्सेदारी भारत से ज्यादा है।

महिला आरक्षण विधेयक पहली बार 12 सितंबर 1996 को एचडी देवेगौड़ा की सरकार में लाया गया था। तब से लेकर अब तक कई बार इस विधेयक को संसद से पारित करवाने की कोशिश की गई। लेकिन सफलता हाथ नहीं लगी। क्षेत्रीय दल विरोध में खड़े रहे। कई बार इस बिल को लेकर क्षेत्रीय दलों के नेताओं ने आरोप लगाए कि इसके माध्यम से पिछड़े वर्ग का हक मारा जाएगा। उन्हें डर है कि कथित उच्च जाति की महिलाओं को यह मौका मिल जाएगा। हालांकि, जिस प्रकार से तिहत्तरवें और चौहत्तरवें संविधान संशोधन के द्वारा पंचायत और नगर पालिका में महिलाओं को तैंतीस फीसद आरक्षण दिया गया है, वह कमोबेश सफल रहा है। महिलाओं की न सिर्फ भागीदारी बढ़ी है, बल्कि उन्होंने बराबर काम भी किया है।

सवाल है कि अगर महिलाएं देश की आबादी का आधा हिस्सा हैं तो राजनीति में उनका प्रतिनिधित्व इतना कम क्यों है? इस सवाल का जवाब किसी भी राजनीतिक दल के पास नहीं है। विडंबना यह है कि आजादी के सत्तर साल बीत जाने के बाद आज भी राजनीति में महिलाओं की भागीदारी में कोई खास बढ़ोतरी नहीं हो रही है। वाकई यह स्थिति चिंताजनक है। देश की सक्रिय राजनीति में उन सीमित महिलाओं ने जगह बनाई है जो या तो खुद राजनीतिक परिवार से रही हैं या फिर जिन्हें किसी बड़े राजनेता का संरक्षण मिला है। किसी साधारण घर से निकल कर राजनीति में जगह बनाने वाली महिलाओं के उदाहरण कम हैं। जब तक महिलाओं का राजनीति में सम्मानजनक तरीके से प्रवेश नहीं होगा तब तक उनका राजनीतिक प्रतिनिधित्व बढ़ने की उम्मीद भी कम ही है। आज जरूरत इस बात की है कि संसद के अगले सत्र में जो भी सरकार आए, सारे दलों को पश्चिम बंगाल और ओड़िशा का उदाहरण देते हुए इस बिल को पास कराने की ईमानदार कोशिश करनी चाहिए।

तकनीक का संजाल

दुनिया मेरे आगे

संजीव राय

भारत में विवाह एक प्राचीन व्यवस्था है, लेकिन शहरीकरण और तकनीकी बदलाव ने इसे बदल दिया है। दुनिया में 1950 से कंप्यूटर तकनीक का प्रसार होने लगा था, मगर 1970 के दशक से इसके प्रसार को गति मिली। कंप्यूटर की दुनिया ने समाज और कार्य करने के तरीके को थोड़ा बदला। फिर 1980 के दशक से देश में टेलीविजन के विस्तार ने सामाजिक बदलाव को तेज किया। दहेज प्रथा का विरोध करते-करते टेलीविजन खुद दहेज का आवश्यक अंग बन गया। शादी को आधार बना कर 'दिलवाले दुल्हनिया ले जाएंगे', 'नदिया के पार', 'हम आपके हैं कौन' जैसी कुछ फिल्मों ने अच्छी कमाई की तो समाज में शादियां भी फिल्मी अंदाज में होने लगीं। मोबाइल और इंटरनेट ने पर्दा प्रथा, सोने-जागने के समय से लेकर फैशन, मनोरंजन और परंपरागत मूल्य बदल दिए। गांव में शादी एक सामूहिक उपक्रम से पारिवारिक उत्सव में बदल गई। शहर-कस्बों में धनी लोगों ने शादी में महंगे मंच बनवाने, मुंबई के कलाकारों का स्टेज शो कराने, अपने परिवार के लोगों को पेशेवर नृत्य-शिक्षकों या निर्देशकों से डांस सिखाने का चलन शुरू किया। जब किसी भी हाई प्रोफाइल शादी की फोटो, इंस्टाग्राम, फेसबुक पर उपलब्ध होने लगी तब छोटे शहरों और गांव-कस्बे में भी हर संभव उनकी नकल होने लगी। ब्यूटी पार्लरों की बढ़ती मांग गांव-देहात तक पहुंच गई।

शादी में होने वाले परंपरागत नाच और गायन को पहले ऑर्केस्ट्रा ने, फिर वीडियो फिल्मों ने खत्म किया। अब स्मार्ट फोन से लोग दूल्हा-दुल्हन की तस्वीरें लेकर तुरंत फेसबुक पर पोस्ट करते हैं। ड्रोन कैमरे से फोटो लिए जा रहे हैं या वीडियो रिकॉर्डिंग की जा रही है। दूल्हा-दुल्हन भी इंस्टाग्राम-व्हाट्स ऐप पर अपना स्टेटस डालते हैं।

हमारे बचपन में गांव में शादी-विवाह एक सामूहिक जिम्मेदारी होती थी। महीनों पहले से गेहूं-चावल आदि को बीन-फटक कर तैयार किया जाता था। शादी की तैयारी के दिनों से महिलाएं गीत गाना शुरू कर देती थीं। गीतों में विविधता रहती थी और शादी के दिन के गीत अलग-अलग मौके जैसे- परिछन, द्वारपूजा, खिचड़ी खवाई, विदाई आदि के हिसाब से गाए जाते थे। उत्तर भारत के ग्रामीण इलाकों में 1970 के दशक तक बारात तीन दिन तक रुकती थी। 1980 में दूसरे दिन बारात विदाई का रिवाज चला। आमतौर पर गांव में बारात का इंतजाम स्कूल प्रांगण या खलिहान में होता था। मोबाइल फोन नहीं था तो लोग आपस में संवाद करते, एक दूसरे के बारे में जानते और दोस्तियां होती थीं।

शादी के लिए 'विवाह भवन' का चलन पिछले दो दशकों के दौरान ही बढ़ा। पहले शादी-ब्याह के मौके के लिए गांव में लोग पड़ोस के दूसरे घरों से गद्दा-बिछावन, चौकी-खटिया मांगते थे। बस एक-दो हलवाई खाना बनाने आते थे। पूरी बेलने, सब्जी काटने आदि का काम घर की या रिश्तेदारों में से आईं महिलाएं करती थीं। कुछ पुरुष भी इसमें सहयोग करते थे। ज्यों-ज्यों गांव में सामूहिकता का अभाव होता गया, टेंट हाउस का व्यापार बढ़ता गया। अब कोई किसी से चौकी-खटिया नहीं मांगता। बर्तन-कुर्सी- सब कुछ टेंट हाउस वाले ले आते हैं। अब गांव भी मेहमान की तरह आता है, शादी देखता है, खाता है और चला जाता है।

मोबाइल फोन, इंटरनेट और सोशल मीडिया ने संबंधों की परिभाषा बदली है। उधर गांव में अब शादी कराने वाले 'अगुआ' नहीं रहे। वह पीढ़ी लगभग खत्म हो गई। अब अखबारों में 'मैट्रिमोनियल' आता है, जिसमें रिश्ते ही रिश्ते का विज्ञापन होता है। शादी के लिए वेबसाइट की भरमार है। ऐसे बदलाव के बीच कुछ पारिवारिक मित्रों की मदद से दिल्ली में रहने वाले दो परिवारों के बीच लड़के-लड़की की शादी को लेकर बात चली। दोनों मध्यमवर्गीय परिवार अभी भी गांव से ताल्लुक रखते हैं और परंपरा-आधुनिकता का संतुलन बनाने की कोशिश करते हैं। तो सीधे मिल कर शादी की बात हुई। यह तय हुआ कि लड़का और लड़की एक दूसरे से मिल लें। लड़के वाले लड़के को लेकर और लड़की का परिवार लड़की को लेकर एक मॉल में आए। फिर लड़का-लड़की एक कॉफी की दुकान में चले गए। एक घंटे के बाद दोनों वापस आए और अपने-अपने परिवारों के साथ घर चले गए।

लड़की के परिवार के बीच उत्सुकता थी कि क्या निर्णय हुआ। कुछ पता नहीं चला। फिर अगले दिन लड़की के मामा ने लड़के के घर फोन किया। जवाब मिला कि हमारा परिवार तो चाहता है कि शादी आपके यहां हो। लड़की वालों ने संतोष की सांस ली। लड़के वाले कुछ दिनों के लिए बाहर चले गए। लड़की वालों ने लड़के के घर एक-दो बार फोन किया तो किसी ने नहीं उठाया। कुछ दिनों तक संवाद नहीं हुआ। फिर सोशल मीडिया पर एक दिन लड़के की बहन ने पोस्ट किया- 'मिल गई मेरे ब्रदर की दुल्हन'! वहां लड़के के साथ काम करने वाली किसी दूसरी लड़की की फोटो थी। फिर लड़की वालों को कुछ और पूछने की जरूरत नहीं रही, क्योंकि दुनिया में अब आधी से अधिक आबादी ऑनलाइन हो चुकी है और विश्व में करोड़ों लोग सोशल मीडिया का इस्तेमाल कर रहे हैं।

श्रेय के हकदार

भारत दुश्मन के उपग्रहों को मार गिराने की रणनीतिक क्षमता हासिल करने वाला दुनिया का चौथा देश बन गया। इससे पहले अमेरिका, रूस और चीन के पास यह क्षमता थी। मतलब यह कि भारत ने अंतरिक्ष में उपग्रह रोधी मिसाइल से एक उपग्रह को मार गिराते हुए अपना नाम अंतरिक्ष महाशक्ति के तौर पर दर्ज करा दिया। यह वह खबर थी, जिसकी घोषणा न तो विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्री ने की, न रक्षा मंत्री ने, बल्कि खुद प्रधानमंत्री ने की और इस ऐलान के साथ की कि वे एक बड़ी खबर बताने वाले हैं। देश के नाम पीएम के संदेश का इंतजार होने लगा, तय वक्त से आधा घंटा होते-होते प्रधानमंत्री आए और इस उपलब्धि की जानकारी दी। किसी ने इसे समझा और ज्यादातर ने नहीं समझा तो समझाने की जिम्मेदारी मीडिया पर आ गई। फिर मीडिया ने अच्छे से समझाया तो पाकिस्तान को भी समझ आया और इमरान खान ने भी हाई लेवल मीटिंग बुला ली और दुनिया को अंतरिक्ष में सैन्यीकरण की भारत की कोशिश से आगाह करने लगे।

इसी के साथ हिंदुस्तान के विपक्षी दलों को भी समझ आ गया कि ऐसी सर्जिकल स्ट्राइक हो चुकी है, जिस पर बोले तो फंसे वाली हालत है। ममता ने कहा कि हर बात का क्रेडिट लेने वाले प्रधानमंत्री अब वैज्ञानिकों की मेहनत का भी क्रेडिट लेने में जुटे हुए हैं। प्रियंका उस वक्त अमेठी में थीं, भैया राहुल के लिए वोट मांग रही थीं, सवाल हुआ तो बोलीं कि यह तो बहुत अच्छी बात है, आखिर भारत की ऐसी ही सफलता के लिए तो पंडित नेहरू ने 1958 में डीआरडीओ की स्थापना की थी! यानी कुल मिलाकर लब्बो-लुआब यह कि कांग्रेस डीआरडीओ की स्थापना का क्रेडिट लेना चाहती है तो भाजपा भी डीआरडीओ के वैज्ञानिकों की इस उपलब्धि में अपना हिस्सा देख रही है!

हमारा इस मामले में सिर्फ यह कहना है कि इसरो या डीआरडीओ जैसी संस्थाएं अपना काम अपनी तय योजना के मुताबिक करती हैं, यह देखकर नहीं करतीं कि किसकी सरकार है, कब चुनाव है और यह कामयाबी भी उसी का हिस्सा है और इसका श्रेय भी वैज्ञानिकों को ही जाता है। इस तरह की क्षमता एक दिन, एक महीने या एक साल में नहीं हासिल की जाती है, एक सतत प्रक्रिया है, वर्षों-दशकों की दिन-रात मेहनत से हासिल होती है। इसलिए जो लोग इस सफलता को अप्रैल फूल या चुनावी प्रचार बता रहे हैं या फिर जो लोग वैज्ञानिकों की इस सफलता का राजनीतिकरण करके चुनावी फायदा उठाने की कोशिश कर रहे हैं, उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। सबको मिल कर वैज्ञानिकों को उनके हक का, उनकी तपस्या का श्रेय देना चाहिए, इसमें भी किसी राजनेता या पार्टी की घुसपैठ नहीं होनी चाहिए।

- *मो. ताबिश, जामिया मिल्लिया, नई दिल्ली*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

महिला की गरिमा का हनन करने वाली टिप्पणी है। यह इस दल के नेता के चरित्र को दर्शाती है।

चुनाव आयोग को इस अभद्र टिप्पणी के मामले में सख्त कदम उठाने चाहिए। क्या महिलाओं का सम्मान हमारे देश के राजनेताओं के लिए महज महिला दिवस की रस्मअदायगी बन कर रह गया है?

- *कशिश वर्मा, एमसीयू, नोएडा*

चुनावी वादे

आम चुनाव दस्तक दे चुका है। नेताओं का शोरगुल शुरू हो गया है। विचारधाराओं की खरीद-बिक्री में तेजी आ चुकी है। सभी कह रहे हैं कि उन्हें मौका मिलेगा तो आसमान से तारे तोड़ कर धरती में बिछा देंगे। जो सत्ता में हैं उनका दावा है पिछले 67 सालों में जो नहीं हुआ वह हमने पांच सालों में करके दिखा दिया।

चुनाव आयोग हमेशा की तरह सब कुछ पारदर्शी एवं निष्पक्ष तरीके से करने के दावे कर रहा है। आयोग को अभी अपने प्रावधानों में बहुत सारे बदलाव करने की आवश्यकता है। मसलन, उसे दलों द्वारा जारी घोषणापत्रों पर खास ध्यान देना पड़ेगा। उसे राजनीतिक दलों के लिए घोषणापत्रों में किए गए 80 फीसद वादों को पूरा करने के सबूत पेश करना अनिवार्य कर देना चाहिए। जो दल ऐसा नहीं करें उन्हें दोबारा चुनाव नहीं लड़ने दिया जाना चाहिए क्योंकि झूठा वादा करना भी जनता को घूस देने जैसा ही है। चुनावी खर्च एक प्रत्याशी के लिए तो तय कर दिया गया मगर उसके लिए उसका दल सौ गुना भी अधिक खर्च कर दे तो उस पर कोई लगाम नहीं है। यानी राशि तय करना एक बेमानी प्रक्रिया है। लोकसभा चुनाव में क्षेत्रीय पार्टियों को घोषणापत्र जारी करने क्यों दिया जाता है? क्या दस या बीस सांसदों को लेकर ये छोटे दल अपने घोषणापत्र को लागू करा सकेंगे?

- *जंग बहादुर सिंह, गोलपहाड़ी, जमशेदपुर*

मील का पत्थर

भारत ने अपना अंतरिक्ष अनुसंधान कार्यक्रम 1962 में संसाधनों की अत्यधिक कमी में शुरू किया था। 1981 में भारत ने जब एप्पल उपग्रह प्रक्षेपित किया था तब इसे प्रक्षेपण यान तक बैलगाड़ी से लेकर जाना पड़ा था जिसका विश्व के शक्तिशाली देशों ने समय-समय पर उपहास उड़ाया। लेकिन आज भारत अंतरिक्ष की महाशक्ति बन कर उभरा है। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) पीएसएलवी के जरिए एक साथ 104 उपग्रहों का सफल प्रक्षेपण करने का भी विश्व रिकार्ड बना चुका है। सबसे सस्ता और सफल मंगल अभियान भी इसरो की ऐसी उपलब्धि था। अब भारतीय अंतरिक्ष वैज्ञानिकों ने एक और मील का पत्थर स्थापित कर दिया है अंतरिक्ष में मिसाइल द्वारा उपग्रह को निशाना बना कर। अमेरिका, रूस और चीन के बाद भारत अंतरिक्ष में उपग्रह को मार गिराने वाला चौथा देश बन गया है। वैज्ञानिकों ने सिर्फ तीन मिनट में उपग्रह घाती मिसाइल के जरिए धरती से तीन सौ किलोमीटर की दूरी पर अंतरिक्ष में अपने द्वारा छोड़े गए एक माइक्रो उपग्रह को ध्वस्त कर दिया जो पृथ्वी की निचली परिधि में मौजूद था। भारत ने यह परीक्षण करके बता दिया आने वाले समय में वह विश्व की क्या, पूरे ब्रह्मांड की महाशक्ति होगा।

- *सुनील कुमार सिंह, मेरठ, उत्तर प्रदेश*

गरिमा के

आजमगढ़ फिल्म अभिने

प्रदेश के रामपुर लोकसभा क्षेत्र

की उम्मीदवार बनाए जाने प

एक वरिष्ठ नेता का कहना था

और ठुमकों से रामपुर की ज

मदद मिलेगी। यह निहायत अ